[2017] 3 उम. नि. प. 66

बिहार राज्य

बनाम

राज बल्लव प्रसाद उर्फ राज बल्लव प्रसाद यादव उर्फ राज बल्लव यादव

24 नवंबर, 2016

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 136 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439, दंड संहिता, 1860 की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212 और 120ख, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 तथा अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6] – बलात्संग – जमानत – जहां अभियुक्त उपरोक्त अधिनियमों की उक्त धाराओं के अधीन आरोपित है वहां इस बात पर ध्यान देते हुए कि अभियोक्त्री के पिता और बहिन सहित अन्य महत्वपूर्ण साक्षियों के साक्ष्य की अभी परीक्षा की जानी है, निष्पक्ष और ऋजु विचारण के लिए अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना उचित और न्यायसंगत नहीं है ।

प्रत्यर्थी का महिला पुलिस थाने में दर्ज कराए गए मामला सं. 15/2016 के अन्तर्गत विचारण चल रहा है जिसमें उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212 और 120ख तथा लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 और अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6 के अधीन अपराध कारित करने के लिए आरोपित किया गया है । प्रत्यर्थी उक्त विचारण में एक सह-अभियुक्त है । इस संबंध में तारीख 9 फरवरी, 2016 को अभियोक्त्री प्रीति कुमारी (अप्राप्तवय) की लिखत शिकायत के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । अन्वेषण के दौरान प्रत्यर्थी की मुख्य अभियुक्त के रूप में शनाख्त की गई जिसने उक्त अप्राप्तवय के साथ बलात्संग कारित किया था । तथापि, चूंकि उस समय प्रत्यर्थी अभिकथित रूप से फरार हो गया था, इसलिए विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 82 और उसके पश्चात् तारीख 27 जुलाई, 2006 को संहिता की धारा 83 के अधीन कार्यवाही की गई । उस प्रक्रम पर, प्रत्यर्थी ने अपनी

गिरफ्तारी की आशंका से तारीख 10 मार्च, 2016 को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और उसे अभिरक्षा में ले लिया गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, तारीख 20 अप्रैल, 2016 को इस मामले में आरोप पत्र फाइल किया गया और तारीख 6 अगस्त, 2016 को आरोप विरचित किए गए । विचारण के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष जमानत आवेदन फाइल किया जिसकी विचारण न्यायालय द्वारा सुनवाई की गई और उसे तारीख 30 मई, 2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । इस आवेदन के खारिज किए जाने से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने जमानत के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन किया जिसकी सुनवाई 27 जुलाई, 2016 को उच्च न्यायालय द्वारा की गई । तथापि, उक्त जमानत आवेदन को वापस लेने के लिए अनुमति की ईप्सा की गई और इस निवेदन को स्वीकार करते हुए जमानत आवेदन तारीख 27 जुलाई, 2016 को वापस लिए जाने के आधार पर खारिज कर दिया गया । इसके 3 सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 19 अगस्त, 2016 को प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक अन्य जमानत आवेदन प्रस्तुत किया । इस बार प्रत्यर्थी अपने प्रयास में सफल हो गया क्योंकि उच्च न्यायालय ने तारीख 30 सितंबर, 2016 को दिए गए निर्णय के अनुसार यह निदेश दिया गया कि प्रत्यर्थी को जमानत पर छोड़ा जाए । प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के समय कतिपय शर्तें अधिरोपित की गईं । प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के आदेश से व्यथित होकर राज्य ने उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल करके इस आदेश को चुनौती दी । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख पर यह उपलब्ध है कि जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रत्यर्थी के विरुद्ध दर्ज कराई गई थी और अन्वेषण के आधार पर उसे गिरफ्तार किए जाने की ईप्सा की गई थी, तब प्रत्यर्थी उक्त गिरफ्तारी से बच रहा था । इतना ही नहीं, अभियोजन पक्ष को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 82 के अधीन विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल करना पड़ा और विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 83 के अधीन भी कार्यवाही की । मामले का इस प्रक्रम पर पहुंचने के बाद ही प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और उसको गिरफ्तार किया गया । प्रत्यर्थी का आवेदन अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 30 मई, 2016 को खारिज कर दिया गया । जमानत खारिज किए जाने के इस आदेश को पारित करते समय विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजक द्वारा यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध सीधे और

विशिष्ट अभिकथन किए गए हैं कि उसने अप्राप्तवय कन्या के साथ बलात्संग किया है और अन्वेषण के दौरान जब अभियुक्त पी. ओ. हाउस में टहल रहा था, आहत ने उसे पहचान लिया था । यह भी विचार किया गया है कि सह-अभियुक्त संदीप सुमन **उर्फ** पुष्पांजय की जमानत की प्रार्थना भी पहले ही खारिज कर दी गई है और प्रत्यर्थी का मामला इससे अधिक गंभीर स्थिति में है और प्रत्यर्थी का आपराधिक इतिहास है जैसा कि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई केस डायरी से स्पष्ट है । अभिलेख पर यह भी उपलब्ध है कि अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों ने यह दावा करते हुए अभ्यावेदन दिए थे कि प्रत्यर्थी अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों को धमकी देता है । इसके अतिरिक्त अभियोक्त्री की ओर से साक्षियों और उसके परिवार के सदस्यों को धमकी देने की अनेक शिकायतों पर विचार करने पर राज्य प्रशासन ने अभियोक्त्री और उसके परिवार की सुरक्षा और संरक्षा के लिए 1 + 4 के रूप में पुलिसकर्मियों को तैनात किया । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के बावजूद उच्च न्यायालय ने औपचारिक और सरसरी टिप्पणी की है कि ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह प्रदर्शित हो कि अभियुक्त ने साक्ष्य में छेड़छाड़ करके विचारण की प्रक्रिया में हस्तक्षेप किया है । दूसरी ओर, उच्च न्यायालय ने मामले के गुणागुणों/साक्ष्य पर चर्चा की है जिसकी इस प्रक्रम पर कोई आवश्यकता नहीं थी । निःसंदेह, यदि किसी मामले में न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि अभियुक्त के विरुद्ध मामला पूर्णतया मिथ्या है तब जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए यह एक सुसंगत कारक हो सकता है । तथापि, इस प्रक्रम पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान मामला इस श्रेणी के अन्तर्गत आता है । इस पर विचारण के दौरान ही विचार किया जाना चाहिए । अतः, विशेष रूप से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए था कि अभियुक्त के न्याय से दूर भागने की कोई संभावना है या नहीं या इस बात की कोई युक्तियुक्त आशंका है या नहीं कि जमानत पर छोड़े जाने के पश्चात् विचारण में कोई छेड़छाड़ करेगा । इन पहलुओं पर उच्च न्यायालय द्वारा समुचित रूप से उतनी गंभीरता के साथ विचार नहीं किया गया है जितना किया जाना चाहिए था । ऐसा किए जाने पर उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार बन जाता है । उच्च न्यायालय ने एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू को अनदेखा किया है अर्थात् सह-अभियुक्त के जमानत आवेदन को खारिज करते समय उसने जल्दबाजी में आदेश पारित किया है बल्कि दिन प्रतिदिन विचारण करके यह सुनिश्चित किया है कि विचारण की प्रक्रिया अतिशीघ्र पूर्ण हो जाए । जब

फास्ट ट्रैक विचारण का आदेश पहले ही पारित कर दिया गया था और सह-अभियुक्त संदीप सुमन **उर्फ** पुष्पांजय की ओर से फाइल किए गए जमानत आवेदन को खारिज भी कर दिया गया था तब उच्च न्यायालय से, प्रत्यर्थी के आवेदन पर विचार करते समय, यह प्रत्याशा की जाती है कि वह इस महत्वपूर्ण तथ्य को भी ध्यान में रखे । इसके अतिरिक्त, विधि का एक सामान्य कथन देते हुए कि अभियुक्त निर्दोष है जब तक कि उसे दोषी साबित न किया जाए, बालक संरक्षण अधिनियम की धारा 29 के उपबंधों को विचार में नहीं लिया गया है । उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हमारी यह राय है कि इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के लिए यह उचित मामला नहीं है और इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा गंभीर रूप से त्रुटि की गई है । पूर्वगामी कारणों के आधार पर हम एतद्द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हुए यह अपील मंजूर करते हैं । यदि प्रत्यर्थी को पहले ही छोड़ दिया गया है, तब वह अभ्यर्पण करेगा और/या उसे तत्काल अभिरक्षा में लिया जाएगा । यदि वह अभी तक जेल में है तब वह इस निर्णय के परिणामस्वरूप जेल में ही रहेगा । (पैरा 16, 17, 18, 19, 20, 21 और 28)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	2014 की दांडिक अपील सं. 25-26, निर्णय की तारीख 22.11.2016 : **रमेश और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	26
[2014]	(2014) 16 एस. सी. सी. 508 : **नीरू यादव** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	25
[2009]	(2009) 14 एस. सी. सी. 286 : **मसरूर** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	24
[2001]	(2001) 6 एस. सी. सी. 338 : **पूरन** बनाम **रामबिलास और एक अन्य** ;	13
[1964]	[1964] 3 एस. सी. आर. 480 : **राजाभाई अब्दुल रहमान मुंशी** बनाम **वसुदेव धनजीभाई मोदी** ;	7
[1958]	[1958] एस. सी. आर. 1226 : **तलब हाजी हुसैन** बनाम **मधुकर पुरुषोत्तम मोंडकर और अन्य** ।	23

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 1141.

2016 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 35951 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 30 सितंबर, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री गोपाल सुब्रह्मण्यम (ज्येष्ठ अधिवक्ता), गोपाल सिंह और मनीष कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से — दुष्यंत दवे, सिद्धार्थ लूथरा (ज्येष्ठ अधिवक्ता, फर्रुख रशीद और संजीव के. सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – इस मामले में के प्रत्यर्थी का विचारण महिला पुलिस थाने में दर्ज कराए गए मामला सं. 15/2016 के अन्तर्गत चल रहा है जिसमें प्रत्यर्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212 और 120ख तथा लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 और अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6 के अधीन अपराध कारित करने के लिए आरोपित किया गया है । प्रत्यर्थी उक्त विचारण में एक सह-अभियुक्त है । इस संबंध में तारीख 9 फरवरी, 2016 को अभियोक्त्री प्रीति कुमारी (अप्राप्तवय) की लिखित शिकायत के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई है । अन्वेषण के दौरान प्रत्यर्थी की शनाख्त मुख्य अभियुक्त के रूप में की गई जिसने उक्त अप्राप्तवय के साथ बलात्संग किया है । तथापि, चूंकि उस समय प्रत्यर्थी अभिकथित रूप से फरार हो गया था, इसलिए विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) की धारा 82 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध कार्रवाई की और उसके पश्चात् तारीख 27 जुलाई, 2006 को प्रत्यर्थी के विरुद्ध संहिता की धारा 83 के अधीन कार्यवाही की गई । उस प्रक्रम पर, प्रत्यर्थी ने अपनी गिरफ्तारी की आशंका से तारीख 10 मार्च, 2016 को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और उसे अभिरक्षा में ले लिया गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, तारीख 20 अप्रैल, 2016 को इस मामले में आरोप पत्र फाइल किया गया और

तारीख 6 अगस्त, 2016 को आरोप विरचित किए गए ।

2. विचारण के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष जमानत आवेदन फाइल किया जिसकी विचारण न्यायालय द्वारा सुनवाई की गई और उसे तारीख 30 मई, 2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । इस आवेदन के खारिज किए जाने से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने जमानत के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन किया जिसकी सुनवाई 27 जुलाई, 2016 को उच्च न्यायालय द्वारा की गई । तथापि, उक्त जमानत आवेदन को वापस लेने के लिए अनुमति की ईप्सा की गई और इस निवेदन को स्वीकार करते हुए जमानत आवेदन तारीख 27 जुलाई, 2016 को वापस लिए जाने के आधार पर खारिज कर दिया गया । इसके 3 सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 19 अगस्त, 2016 को प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक अन्य जमानत आवेदन प्रस्तुत किया । इस बार प्रत्यर्थी अपने प्रयास में सफल हो गया क्योंकि उच्च न्यायालय ने तारीख 30 सितंबर, 2016 को दिए गए निर्णय के अनुसार यह निदेश दिया कि प्रत्यर्थी को जमानत पर छोड़ा जाए । प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के समय कतिपय शर्तें अधिरोपित की गईं । प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर राज्य ने वर्तमान कार्रवाइयों में इस आदेश को चुनौती दी है । तारीख 7 अक्तूबर, 2016 को विशेष इजाजत याचिका में नोटिस जारी किया गया और अगली तारीख 17 अक्तूबर, 2016 को नियत की गई । इसके पश्चात्, सुनवाई की प्रभावी तारीख 8 नवंबर, 2016 नियत की गई है और निम्न आदेश पारित किया गया है :–

हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है ।

वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने इस मामले के प्रत्यर्थी को उसके विरुद्ध दंड संहिता की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212, 120ख, बालक संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 के अधीन आरोप के संबंध में चल रहे विचारण के लंबित रहने के दौरान जमानत मंजूर की है । प्रत्यर्थी का विचारण अनैतिक व्यापार अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6 के अधीन अपराध के लिए भी किया जा रहा है । यह मामला अपर सेशन (प्रथम) सह-विशेष न्यायाधीश, नालंदा, बिहार शरीफ के समक्ष लंबित है । अभियोक्त्री का अभिसाक्ष्य अभिलिखित किया जाना शेष है । इस प्रक्रम पर कोई भी विचार किए बिना हमारी यह राय है कि

अभियोक्त्री को बिना किसी भय और दबाव के कथन करने योग्य बनाने के लिए यह आवश्यक होगा कि अभियोक्त्री उस समय अपना अभिसाक्ष्य दे जब प्रत्यर्थी अभिरक्षा में हो । इसी कारण हम इस मामले में के प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 3 सितंबर, 2016 के निर्णय और आदेश को प्रत्यर्थी को अभिरक्षा में लेने की तारीख से 2 सप्ताह के लिए निलंबित करते हैं । हम यह निदेश देते हैं कि प्रत्यर्थी कल अर्थात् 9 नवंबर, 2016 को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करेगा और उसे उसी प्रकार अभिरक्षा में रखा जाएगा जिस प्रकार वह उच्च न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर किए जाने के पूर्व 2 सप्ताह के लिए कारावास में रखा गया था ।

विचारण न्यायालय को अभियोक्त्री का साक्ष्य तत्काल अभिलिखित करना है और 2 सप्ताह की उक्त अवधि के भीतर उसे पूरा करने का प्रयास करना है ।

हमें यह भी आशा और प्रत्याशा है कि प्रत्यर्थी अभियोक्त्री या अन्य किसी अभियोजन साक्षी पर किसी भी प्रकार का प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दबाव नहीं डालेगा ।

इस मामले में, आगे निदेश दिए जाने के लिए, तारीख 13 नवंबर, 2016 नियत की जाती है । इस आदेश की एक प्रति दस्ती दिए जाने की अनुमति दी जाती है ।

3. उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में प्रत्यर्थी ने अभ्यर्पण किया और 2 सप्ताह का समय कल अर्थात् तारीख 23 नवंबर, 2016 को समाप्त हो गया और उसी समय इस अपील की अंतिम सुनवाई की गई । इस अवधि के दौरान, अभियोक्त्री का कथन अभिलिखित किया गया और उसकी प्रतिपरीक्षा भी कराई गई ।

4. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री गोपाल सुब्रह्मण्यम ने यह दलील दी है कि चूंकि अन्य साक्षियों की परीक्षा होनी शेष है जो कि महत्वपूर्ण साक्षी हैं, इसलिए न्याय के हित के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्यर्थी को अभी विचारण के दौरान जेल में रखा जाए । अतः, विद्वान् काउंसेल ने न्यायालय को अपीलार्थी के अनुसार गुणता के आधार पर अपील की सुनवाई किए जाने के लिए सहमत किया, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जमानत का आदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित

नहीं किया जाना चाहिए और उच्च न्यायालय ने ऐसा आदेश पारित करने में घोर अवैधता कारित की है । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए हमने मामले की अंतिम रूप से सुनवाई की और दोनों पक्षों द्वारा दी गई विस्तृत दलीलों पर भी विचार किया है ।

5. श्री सुब्रह्मण्यम द्वारा यह दलील दी गई है कि आक्षेपित निर्णय अनुचित है क्योंकि इसमें सुसंगत कारकों पर विचार नहीं किया गया है जिन्हें जमानत आवेदन विनिश्चित किए जाने के समय पर ध्यान में रखना चाहिए था और ऐसे सुसंगत कारकों को ध्यान नहीं रखा गया है । यह भी दलील दी गई है कि उच्च न्यायालय ने आरंभ में ही यह मत व्यक्त किया है कि निर्दोषिता की उपधारणा अभियुक्त (इस मामले में का प्रत्यर्थी) के पक्ष में तब तक की जानी चाहिए जब तक उसे दोषी साबित न कर दिया जाए । इसके पश्चात् न्यायालय ने मामले की गुणता पर विचार किया है । इस प्रक्रिया में, अपीलार्थी के अनुसार, न्यायालय जमानत आवेदन मंजूर किए जाने या खारिज किए जाने से संबंधित सुसंगत तथ्यों पर समाधानप्रद रूप में विचार करने में असफल रहा है अर्थात् यदि प्रत्यर्थी को जमानत पर छोड़ दिया जाए तब वह वास्तव में साक्षियों या विचारण की प्रक्रिया को प्रभावित करेगा या नहीं या जमानत मंजूर किए जाने के पश्चात् प्रत्यर्थी फरार हो जाएगा और विचारण के लिए उपलब्ध नहीं रहेगा । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह तर्क दिया है कि इस मामले की पृष्ठभूमि पर विचार करने पर स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस बात की युक्तियुक्त आशंका है कि प्रत्यर्थी द्वारा साक्षियों को अभित्रस्त किया जाएगा या उन पर दबाव डाला जाएगा क्योंकि प्रत्यर्थी ही विधायक होने के नाते प्रभावशाली व्यक्ति नहीं है अपितु उसने इस घटना से पहले भी ऐसे कई प्रयास किए हैं । शिकायतें अभियोक्त्री और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा की गई हैं । यह भी इंगित किया गया है कि न्यायालय यह भी विचार करने में असफल रहा है कि एक पूर्ववर्ती अवसर पर प्रत्यर्थी को न्यायालय ने उपस्थित कराने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अधीन कार्यवाही की गई थी । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने एक अन्य दलील यह भी दी है कि जब उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 27 जुलाई, 2016 को अर्थात् मुश्किल से तीन सप्ताह पूर्व जमानत आवेदन खारिज किया गया था, तब से लेकर अब तक अर्थात् द्वितीय जमानत आवेदन तारीख 19 अगस्त, 2016 को फाइल किए जाने तक परिस्थितियों में कोई भी परिवर्तन नहीं आया है जिनमें आक्षेपित आदेश पारित किया जाए । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह भी इंगित किया है कि सह-अभियुक्त का जमानत आवेदन तारीख

20 अगस्त, 2016 को उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया है और ऐसा करने में उच्च न्यायालय ने यह निदेश दिया है कि विचारण लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम के निबंधनों में बिना किसी विलंब दिन प्रतिदिन कार्यवाही करके पूरा करना है । अपीलार्थी के अनुसार इन सभी पहलुओं को उच्च न्यायालय द्वारा अनदेखा किया गया है, इसलिए यह आदेश चुनौती दिए जाने योग्य है । इस प्रतिपादना के समर्थन में कुछ निर्णयों को उद्धृत किया है जिन पर जमानत मंजूर किए जाने का आदेश पारित करते समय विचार किया जा सकता है ।

6. इस प्रक्रम पर यह भी इंगित किया जा सकता है कि विशेष इजाजत याचिका में आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के लिए यह आधार लिया गया है कि जब तारीख 27 जुलाई, 2016 को उच्च न्यायालय के विशेष न्यायाधीश द्वारा पूर्ववर्ती आवेदन खारिज कर दिया गया था, तब इस न्यायालय के निदेशानुसार द्वितीय आवेदन उसी न्यायाधीश के समक्ष सूचीबद्ध किया जाना चाहिए था । तथापि, द्वितीय आवेदन स्वयं मुख्य न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया जिसे उस न्यायाधीश को समनुदेशित करने के बजाय जिसने तारीख 27 जुलाई, 2016 को आदेश पारित किया था, उसमें आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया । तथापि, श्री सुब्रह्मण्यम ने इस आधार पर अधिक बल नहीं दिया है सिवाय इसके कि उन्होंने यह निवेदन किया है कि मामला उसी न्यायाधीश के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए जिसने तारीख 27 जुलाई, 2016 को आदेश पारित किया था और जिनके समक्ष सुनवाई के लिए जमानत का प्रथम आवेदन प्रस्तुत किया गया था ।

7. प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री दुष्यंत दवे ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि यह विशेष इजाजत याचिका मात्र इस आधार पर खारिज की जानी चाहिए कि अपीलार्थी ने उसी न्यायाधीश के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किए जाने के बजाय, जिसने उस पर पूर्व में सुनवाई की थी, स्वयं उक्त न्यायालय द्वारा जमानत आवेदन पर सुनवाई किए जाने के संबंध में मिथ्या अभिवाक् किया है । उन्होंने यह इंगित किया है कि स्वयं आक्षेपित आदेश में यह मत अभिव्यक्त किया गया है कि प्रथम जमानत आवेदन में गुणागुण के आधार पर विनिश्चय नहीं किया गया था और वह तारीख 27 जुलाई, 2016 को वापस लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया था, इसलिए इन कार्यवाहियों में द्वितीय जमानत आवेदन की कार्यवाही को लेकर कोई भी विधिक अड़चन नहीं है और अपर महाधिवक्ता का कथन जो उच्च न्यायालय में राज्य की ओर से हाजिर हुए थे, विशेषकर इस संबंध

2016(11) eILR(PAT) SC 1

में अभिलिखित किया गया है कि उन्हें उक्त न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी के आवेदन पर विचार करने को लेकर कोई आपत्ति नहीं है । यह अभिलिखित किए जाने के पश्चात् ही जमानत आवेदन पर सुनवाई की गई और आदेश पारित किया गया । इस प्रकार यह दलील दी गई है कि राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी व्यक्ति विशेष की तुलना में अधिक जिम्मेदार होता है और राज्य का ही पक्षकथन स्पष्ट और ठोस नहीं है और उसने उपर्युक्त तथ्य को दबाकर ऐसा अभिवाक् करते हुए न्यायालय के समक्ष प्रतिकूल प्रयास किया है । **राजाभाई अब्दुल रहमान मुंशी** बनाम **वसुदेव धनजीभाई मोदी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया गया है और यह अभिवाक् किया गया है कि अपीलार्थी/राज्य का यह आचरण इस प्रकार का है कि यह याचिका ग्रहण नहीं की जानी चाहिए ।

8. निःसंदेह, इस तथ्य को लेकर श्री दवे के उपर्युक्त अभिवाक् में कुछ सार हो सकता है कि प्रधान अपर महाधिवक्ता ने स्वयं उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी है कि राज्य को संबंधित न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी के जमानत आवेदन पर विचार किए जाने पर कोई भी आपत्ति नहीं है । इस पृष्ठभूमि में राज्य ने इस आधार पर आदेश को चुनौती देने में न्यायोचित नहीं किया है कि मामले पर मुख्य न्यायाधीश द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए था अपितु इस आवेदन को उसी न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए था जिन्होंने प्रथम जमानत आवेदन पर तारीख 27 जुलाई, 2016 को आदेश पारित किया था । इस कारण से यह हो सकता है कि चुनौती में जो आधार लिया गया है उस पर श्री सुब्रह्मण्यम द्वारा गंभीरता से बल न दिया गया हो । किसी भी स्थिति में, हमारी यह राय है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, हम श्री दवे के इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि ऐसा किए जाने के परिणामस्वरूप विशेष इजाजत याचिका खारिज कर दी जाए । इस संप्रेक्षण के दो कारण हैं जो निम्न प्रकार हैं :–

(i) प्रधान अपर महाधिवक्ता का यह कथन कि राज्य को इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि उक्त न्यायालय द्वारा आवेदन पर विचार किया जाए और उनके इस कथन को स्वयं आदेश के आरंभ में ही अभिलिखित किया गया है, अतः, तथ्य को दबाने का प्रश्न ही नहीं उठता है । जब विशेष इजाजत याचिका ग्रहण की गई थी तभी यह तथ्य न्यायालय की जानकारी में था और उसके पश्चात् ही नोटिस

[1] [1964] 3 एस. सी. आर. 480.

जारी किया गया था । अतः, इस आधार पर न्यायालय को भ्रमित करने का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

(ii) मुख्य बात यह है कि विशेष इजाजत याचिका में नोटिस जारी करने के लिए मुख्य कारण यह दिया गया था कि यह न्यायालय गुणता के आधार पर इस पर विचार करना चाहता है कि क्या इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग समुचित रूप से किया गया है या नहीं और ऐसे प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के लिए यह एक उचित मामला है या नहीं जिसका अभी विचारण किया जा रहा है । हमें दांडिक विचारण पर विचार करना है और इस न्यायालय को विशेष रूप से इस पर विचार करना है कि विचारण की कार्यवाही निष्पक्ष रूप से की गई है या नहीं । न्यायालय की ये भावनाएं सुनवाई के समय पर श्री दवे के समक्ष स्पष्ट कर दी गईं थीं ।

9. इस प्रकार श्री दवे ने मामले पर गुणता के आधार पर तर्क दिया और साथ ही यह अभिवाक् किया कि जब एक बार उच्च न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर कर दी जाती है तब इस न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने में हस्तक्षेप नहीं कर सकता । यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी के पास द्वितीय जमानत आवेदन फाइल करने का एक विधिमान्य कारण था क्योंकि इसी दौरान तारीख 6 अगस्त, 2016 को आरोप विरचित किए गए थे जोकि परिस्थितियों में आने वाला एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है ।

10. श्री सुब्रह्मण्यम की ओर से किए गए प्रकथनों का खंडन करते हुए श्री दवे ने यह भी तर्क दिया कि जमानत मंजूर किए जाने के पश्चात्, प्रत्यर्थी ने किसी भी प्रकार से उसका दुरुपयोग नहीं किया और ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि प्रत्यर्थी ने साक्षियों को प्रभावित करने या अभिलेख के साथ छेड़छाड़ करने का प्रयास किया है और इस संबंध में आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत पूर्णतया न्यायोचित है । श्री दवे ने यह भी दलील दी है कि जब एक बार यह पाया जाए कि उच्च न्यायालय ने विस्तृत आदेश पारित करने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है और उसके पश्चात् ही जमानत मंजूर की है, तब ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रतिपादना के समर्थन में, विद्वान् काउंसेल ने कई निर्णय निर्दिष्ट किए हैं जिनका सार निम्न प्रकार है :–

(i) राज्य (दिल्ली प्रशासन) **बनाम** संजय गांधी (1978) 2 एस. सी. सी. 411) –

"13. जब जमानत का आवेदन किया जाता है और जमानत खारिज कर दी जाती है, यह बात इस स्थिति से भिन्न है जब जमानत मंजूर कर दी गई हो और तत्पश्चात् वह खारिज कर दी जाए । अजमानतीय मामले में जमानत आवेदन खारिज करना अपेक्षाकृत ऐसे मामले से सरल है जिसमें पहले जमानत मंजूर कर दी गई हो और बाद में खारिज कर दी जाए । जमानत का रद्द किया जाना आवश्यक रूप से उस विनिश्चय पर पुनर्विचार करना है जो पहले दिया जा चुका है और कुल मिलाकर तभी अनुध्यात किया जा सकता है यदि परिस्थितियों के आधार पर यह कहा जा सके निष्पक्ष विचारण के लिए अभियुक्त को विचारण के दौरान जमानत पर बने रहने से सही परिणाम नहीं निकलेगा । यह तथ्य कि अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो गए हैं, स्वयं में ऐसा आधार नहीं है कि यह कहा जा सके कि अभियुक्त ने इन साक्षियों पर दबाव डाला है ....."

(ii) भागीरथ सिंह **बनाम** गुजरात राज्य (1984) 1 एस. सी. सी. 284 –

"7. हमारी राय में, विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए वैवेकिक आदेश में हस्तक्षेप करके ज़मानत रद्द किए जाने का निदेश दिए जाने के प्रश्न पर विचार करते समय विद्वान् न्यायाधीश स्वयं भ्रमित प्रतीत होते हैं । कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश की चिन्ता का मूल्यांकन कर सकता था कि उन्होंने इन परिस्थितियों पर विचार किया है कि आहत पर हमला किया गया और वह सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ता था और इसीलिए अभियुक्त को जमानत प्रदान नहीं की जानी चाहिए, किन्तु हम यह समझने में असफल रहे हैं कि कैसे ऐसी परिस्थिति पर जमानत मंजूर करने वाले विद्वान् सेशन न्यायाधीश के वैवेकिक आदेश में हस्तक्षेप किए जाने को अनुज्ञात करें । उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को पूर्णतया अनदेखा किया है कि उसे यह विरचित नहीं करना था कि जमानत प्रदान की जानी चाहिए या नहीं अपितु आवेदन

जमानत रद्द किए जाने के लिए प्रस्तुत किया गया था । अत्यंत तर्कसम्मत और प्रभावशाली परिस्थितियां आकर्षक होती हैं और उसके पश्चात् ही जमानत रद्द किए जाने पर विचार किया जा सकता है और आजकल जमानत मंजूर किए जाने का प्रचलन है क्योंकि इस न्यायालय के अनेक . विनिश्चयों द्वारा यह सुस्थापित है कि जमानत मंजूर करने की शक्ति का प्रयोग ऐसी स्थिति में नहीं किया जाना चाहिए जब विचारण के पूर्व दंड अधिरोपित किया जा रहा हो । ऐसी स्थिति में विचार के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि अभियुक्त अपने विचारण के लिए तत्परता से उपलब्ध है या नहीं और वह जमानत मंजूर किए जाने पर उसका दुरुपयोग साक्ष्य में छेड़छाड़ करके अपने पक्ष में करेगा या नहीं । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश इन दोनों सुसंगत विचारों के आधार पर पूर्णतया मूक है । इन्हीं कारणों के आधार पर हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश में हस्तक्षेप करना न्याय के हित में उचित समझते हैं ।"

(iii) बिहार विधिक सहायता समिति **बनाम** भारत का मुख्य न्यायाधीश और एक अन्य (1986) 4 एस. सी. सी. 767 –

"3. यह प्रश्न कि जमानत खारिज किए जाने या अग्रिम जमानत के विरुद्ध फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका तत्काल सूचीबद्ध की जानी चाहिए या नहीं, एक ऐसा प्रश्न है जो मुख्य न्यायाधीश के प्रशासनिक अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आता है और इस संबंध में हम कोई भी निदेश नहीं दे सकते । किंतु, हम यह इंगित कर सकते हैं कि प्रत्येक ऐसे याची को जो जमानत या अग्रिम जमानत से इनकारी के विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका फाइल करता है, अपना मामला उनकी प्रशासनिक हैसियत में विद्वान् मुख्य न्यायाधीश के समक्ष इसे तत्काल सूचीबद्ध करने का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत करने का अवसर होता है और जहां कहीं भी कोई मामला तत्काल सूचीबद्ध किया जाना हो वहां मुख्य न्यायाधीश उसे तत्काल सूचीबद्ध किए जाने के लिए समुचित आदेश पारित करता है । तथापि, यह इंगित किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय या मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए आदेशों के विरुद्ध अपील न्यायालय बनना कभी भी इस न्यायालय का

आशय नहीं था । इसका सृजन सर्वोच्च न्यायालय के रूप में सम्पूर्ण देश के लिए विधि का अनुपालन किए जाने और विशेष इजाजत मंजूर किए जाने के लिए असाधारण अधिकारिता संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन प्रदत्त किए जाने के लिए किया गया है ताकि यह न्यायालय जब कभी यह देखे कि निचले न्यायालयों या अभिकरणों द्वारा विधि ठीक प्रकार प्रयोग नहीं किया गया है और उस विषय पर विधि की सही घोषणा करना आवश्यक है, तब हस्तक्षेप कर सकता है । यह असाधारण अधिकारिता का प्रयोग सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोर अन्याय से बचने के लिए भी किया जा सकता है किंतु ऐसे मामले अपनी प्रकृति के आधार पर आपवादिक मामले होंगे ।"

11. हमने दोनों ओर के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर गहराई से विचार किया है ।

12. हम प्रारंभ में ही यह मत व्यक्त कर सकते हैं कि हमें उन परिसीमाओं का भान है जिनसे हम निचले न्यायालय और वह भी उच्च न्यायालय जैसे उच्चतर न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर किए जाने के विरुद्ध किए गए अभिवाक् पर सुनवाई करते समय आबद्ध हैं । यह प्रत्याशा की जाती है कि जब एक बार उच्च न्यायालय द्वारा सुसंगत बातों के आधार पर विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाता है और जमानत मंजूर की जाती है तब ऐसी स्थिति में यह न्यायालय प्रसामान्यतः ऐसे विवेकाधिकार के प्रयोग में तब तक हस्तक्षेप नहीं करता है जब तक कि यह न पाया जाए कि स्वयं विवेकाधिकार का प्रयोग असंगत बातों के आधार पर किया गया है और/या ऐसे सुसंगत कारकों की अनदेखी या उपेक्षा की गई है जिन पर विचार किया जाना चाहिए था । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए निर्णयों में, जैसे कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय ने उन बातों का उल्लेख किया है जिन्हें यह परखने के लिए ध्यान में रखना चाहिए कि निचले न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया जमानत आदेश न्यायोचित है या नहीं । जमानत मंजूर करने से संबंधित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अत्यंत तर्कसंगत और प्रभावी परिस्थितियां होनी चाहिएं । उपरोक्त निर्णयों में इन्हीं महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया गया है अर्थात् अभियुक्त वास्तव में अपने विचारण के लिए उपलब्ध रहेगा या नहीं और यह कि वह अपने पक्ष में साक्ष्य में छेड़छाड़ करके जमानत मंजूर किए जाने का दुरुपयोग करेगा या नहीं । हमने इन बातों को ध्यान में रखते हुए

आक्षेपित आदेश की शुद्धता पर विचार किया है ।

13. इस प्रक्रम पर हम **पूरन** बनाम **रामविलास और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिसमें जमानत के आवेदन तथा जमानत रद्द किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन पर विचार करते समय जिन सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए उनका उल्लेख विस्तार से किया गया है । जहां तक जमानत के आवेदन को ग्रहण किए जाने का संबंध है, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि जमानत मंजूर किए जाने के समय कारण अभिलिखित किए जाने चाहिएं किंतु साक्ष्य के गुणों और अवगुणों की चर्चा किए बिना ही ऐसा करना चाहिए । यह स्पष्ट किया गया है कि साक्ष्य पर चर्चा करना पूर्णतया विनिश्चय के लिए दिएं गए कारणों से भिन्न होता है । इस न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि जब जमानत मंजूर किए जाने का आदेश अभिलेख पर उपलब्ध महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा करके और कारण दिए बिना पारित किया जाता है तब ऐसा करना अनुचित होगा तथा विधि के सिद्धांतों के प्रतिकूल होगा । ऐसे आदेश के अन्तर्गत ही जमानत रद्द किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत करने हेतु आधार का उपबंध किया जाता है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जमानत रद्द किए जाने का यह आधार उस आधार से भिन्न है जो अभियुक्त के दुराचरण से या कुछ नए तथ्यों से उद्भूत होता है ।

14. वर्तमान मामला पहले वाली श्रेणी के अन्तर्गत आता है क्योंकि अपीलार्थी इस आधार पर जमानत रद्द किए जाने की ईप्सा नहीं कर रहा है कि प्रत्यर्थी ने जमानत मंजूर किए जाने के पश्चात् दुर्व्यवहार किया है या कुछ ऐसे नए तथ्य सामने आए हैं जिनके आधार पर जमानत रद्द किया जाना आवश्यक है । ऐसा मामला भी हो सकता है जिसमें अभियुक्त के आचरण या जमानत मंजूर किए जाने के बाद की घटनाओं पर विचार किया जाना चाहिए । दूसरी ओर जब जमानत मंजूर किए जाने के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि स्वयं जमानत मंजूर किया जाना विधि के सिद्धांत के प्रतिकूल है, ऐसे आदेश का न्यायिक पुनर्विलोकन करते हुए इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि जमानत मंजूर करने में न्यायालय द्वारा अधिकारिता का दुरुपयोग या मनमाना कृत्य किया गया है या नहीं । यदि ऐसा किया गया है, तब भी इस न्यायालय को ऐसे आदेश में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है ।

---

[1] (2001) 6 एस. सी. सी. 338.

2016(11) eILR(PAT) SC 1

15. उपर्युक्त मत को ध्यान में रखते हुए हम इस मामले में चर्चा करेंगे ।

16. अभिलेख पर यह उपलब्ध है कि जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रत्यर्थी के विरुद्ध दर्ज कराई गई थी और अन्वेषण के आधार पर उसे गिरफ्तार किए जाने की ईप्सा की गई थी, तब प्रत्यर्थी उक्त गिरफ्तारी से बच रहा था । इतना ही नहीं, अभियोजन पक्ष को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 82 के अधीन विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल करना पड़ा और विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 83 के अधीन भी कार्यवाही की । मामले का इस प्रक्रम पर पहुंचने के बाद ही प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और उसको गिरफ्तार किया गया ।

17. प्रत्यर्थी का आवेदन अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 30 मई, 2016 को खारिज कर दिया गया । जमानत खारिज किए जाने के इस आदेश को पारित करते समय विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजक द्वारा यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध सीधे और विशिष्ट अभिकथन किए गए हैं कि उसने अप्राप्तवय कन्या के साथ बलात्संग किया है और अन्वेषण के दौरान जब अभियुक्त पी. ओ. हाउस में टहल रहा था, आहत ने उसे पहचान लिया था । यह भी विचार किया गया है कि सह-अभियुक्त संदीप सुमन **उर्फ** पुष्पांजय की जमानत की प्रार्थना भी पहले ही खारिज कर दी गई है और प्रत्यर्थी का मामला इससे अधिक गंभीर स्थिति में है और प्रत्यर्थी का आपराधिक इतिहास है जैसा कि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई केस डायरी से स्पष्ट है ।

18. अभिलेख पर यह भी उपलब्ध है कि अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों ने यह दावा करते हुए अभ्यावेदन दिए थे कि प्रत्यर्थी अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों को धमकी देता है । इसके अतिरिक्त अभियोक्त्री की ओर से साक्षियों और उसके परिवार के सदस्यों को धमकी देने की अनेक शिकायतों पर विचार करने पर राज्य प्रशासन ने अभियोक्त्री और उसके परिवार की सुरक्षा और संरक्षा के लिए 1 + 4 के रूप में पुलिसकर्मियों को तैनात किया ।

19. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के बावजूद उच्च न्यायालय ने औपचारिक और सरसरी टिप्पणी की है कि ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह प्रदर्शित हो कि अभियुक्त ने साक्ष्य में छेड़छाड़ करके विचारण की प्रक्रिया में हस्तक्षेप किया है । दूसरी ओर, उच्च न्यायालय ने मामले के

गुणागुणों/साक्ष्य पर चर्चा की है जिसकी इस प्रक्रम पर कोई आवश्यकता नहीं थी । निःसंदेह, यदि किसी मामले में न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि अभियुक्त के विरुद्ध मामला पूर्णतया मिथ्या है तब जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए यह एक सुसंगत कारक हो सकता है । तथापि, इस प्रक्रम पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान मामला इस श्रेणी के अन्तर्गत आता है । इस पर विचारण के दौरान ही विचार किया जाना चाहिए । अतः, विशेष रूप से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए था कि अभियुक्त के न्याय से दूर भागने की कोई संभावना है या नहीं या इस बात की कोई युक्तियुक्त आशंका है या नहीं कि जमानत पर छोड़े जाने के पश्चात् विचारण में कोई छेड़छाड़ करेगा । इन पहलुओं पर उच्च न्यायालय द्वारा समुचित रूप से उतनी गंभीरता के साथ विचार नहीं किया गया है जितना किया जाना चाहिए था । ऐसा किए जाने पर उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार बन जाता है ।

20. उच्च न्यायालय ने एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू को अनदेखा किया है अर्थात् सह-अभियुक्त के जमानत आवेदन को खारिज करते समय उसने जल्दबाजी में आदेश पारित किया है बल्कि दिन-प्रतिदिन विचारण करके यह सुनिश्चित किया है कि विचारण की प्रक्रिया अतिशीघ्र पूर्ण हो जाए । जब फास्ट ट्रैक विचारण का आदेश पहले ही पारित कर दिया गया था और सह-अभियुक्त संदीप सुमन **उर्फ** पुष्पांजय की ओर से फाइल किए गए जमानत आवेदन को खारिज भी कर दिया गया था तब उच्च न्यायालय से, प्रत्यर्थी के आवेदन पर विचार करते समय, यह प्रत्याशा की जाती है कि वह इस महत्वपूर्ण तथ्य को भी ध्यान में रखे । इसके अतिरिक्त, विधि का एक सामान्य कथन देते हुए कि अभियुक्त निर्दोष है जब तक कि उसे दोषी साबित न किया जाए, बालक संरक्षण अधिनियम की धारा 29 के उपबंधों को विचार में नहीं लिया गया है जो कि निम्न प्रकार हैं :–

> **"29. कतिपय अपराधों के बारे में उपधारणा :** जहां किसी व्यक्ति को इस अधिनियम की धारा 3, धारा 5, धारा 7 और धारा 9 के अधीन किसी अपराध को करने या दुष्प्रेरण करने या उसको करने का प्रयत्न करने के लिए अभियोजित किया गया है वहां विशेष न्यायालय तब तक यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने, यथास्थिति, वह अपराध किया है, दुष्प्रेरण किया है या उसको करने का प्रयत्न किया है जब तक कि इसके विरुद्ध साबित नहीं कर दिया

2016(11) eILR(PAT) SC 1

जाता है ।"

21. उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हमारी यह राय है कि इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के लिए यह उचित मामला नहीं है और इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा गंभीर रूप से त्रुटि की गई है । हम **कंवर सिंह मीणा** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले को उद्धृत करना चाहेंगे :–

> "10..... दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 (2) के अधीन आवेदन रद्द करते समय मुख्य रूप से न्यायालय द्वारा इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि अभियुक्त साक्ष्य में छेड़छाड़ कर सकता है या नहीं या न्याय की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर सकता है या नहीं या न्याय की प्रक्रिया में हस्तक्षेप कर सकता है या नहीं । किंतु, इतना काफी नहीं है । उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ऐसे मामलों में भी जमानत रद्द कर सकते हैं जिनमें जमानत मंजूर किए जाने का आदेश गंभीर शिथिलताओं से ग्रसित हो और उनसे अन्याय होता हो । यदि जमानत मंजूर करने वाला न्यायालय उन सुसंगत तथ्यों को अनदेखा करता है जिनसे अभियुक्त का अपराध में आलिप्त होना प्रथमदृष्ट्या उपदर्शित होता हो या न्यायालय ऐसे असंगत तथ्यों पर विचार करता हो जिनका अभियुक्त को जमानत मंजूर किए जाने के प्रश्न से कोई संबंध न हो, तब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय जमानत रद्द करने में न्यायोचित होगा । ऐसे आदेश जमानत मंजूर किए जाने की शक्ति से संबंधित सुस्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध होते हैं । ऐसे आदेश विधिक रूप से शिथिल और असाध्य होते हैं जिनसे अन्याय होता है और उन प्रभावी परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना पारित किए जाते हैं जैसे अभियुक्त का साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करना, उसका न्याय से भाग जाना आदि, ऐसी स्थिति में न्यायालय को जमानत रद्द करने से रोका नहीं जा सकता । उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ऐसे आदेशों को रद्द करने के लिए आबद्ध है विशेषकर ऐसी स्थिति में जब ऐसे अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाए जो जघन्य अपराध में आलिप्त हो क्योंकि परिणामस्वरूप, ऐसा करना अभियोजन पक्षकथन को निर्बल बनाना होता है और इसका समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । यह कहने

---

[1] (2012) 12 एस. सी. सी. 180.

की आवश्यकता नहीं है कि यद्यपि इस न्यायालय को व्यापक शक्ति प्राप्त है, इस न्यायालय को जमानत मंजूर किए जाने और रद्द किए जाने दोनों ही के लिए ये सिद्धांत बराबर-बराबर लागू होते हैं ।

18..... मामले पर कुल मिलाकर विचार करते हुए हमारी यह राय है कि न्याय के हित के लिए अभियुक्त को जमानत मंजूर करने का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है और पुलिस को अभियुक्त् को अभिरक्षा में लेने का निदेश दिया जाना आवश्यक है ..... ।"

22. जैसा कि हमने प्रारंभ में ही उपदर्शित किया है कि हमारे समक्ष विचार के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि विचारण निष्पक्ष होना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि न्याय किया गया है । यह केवल तब हो सकता है जब साक्षी बिना किसी भय के स्वतंत्रतापूर्वक सत्यता के साथ अभिसाक्ष्य दें और इस न्यायालय का समाधान हो गया है कि वर्तमान मामले में ऐसा तभी हो सकता है जब प्रत्यर्थी को जमानत पर न छोड़ा जाए । निष्पक्ष विचारण के महत्व पर **पंचानन मिश्रा** बनाम **दिगम्बर मिश्रा और अन्य**[1] वाले मामले में विचार किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए जमानत के आदेश को निम्न निबंधनों में अपास्त किया गया है :–

"13. हमने दोनों पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई पारस्परिक विरोधी दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है । जमानत रद्द किए जाने का उद्देश्य निष्पक्ष विचारण बनाए रखना है और समाज के साथ यह न्याय करना है कि अभियुक्त जघन्य अपराध से संबंधित साक्ष्य में छेड़छाड़ करने से रुका रहे और यदि ऐसे मामले में विलंब किया जाता है तब जमानत रद्द किए जाने का उद्देश्य पूरा नहीं होगा और इससे अभियोजन पक्षकथन तथा उसके हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब ऐसे जघन्य अपराध में किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाता है जिनमें दंड अत्यधिक होता है, तब अभियुक्त ऐसे दंड से बचने के लिए अभियोजन साक्षियों पर दबाव डालने जैसे क्रियाकलाप में आलिप्त हो जाता है, आहत के परिवार के सदस्यों को धमकी देता है और कानून और व्यवस्था बनाए रखने में बाधा उत्पन्न करता है ।"

---

[1] (2005) 3 एस. सी. सी. 143.

23. ऐसा मत **तलब हाजी हुसैन** बनाम **मधुकर पुरुषोत्तम मोंडकर और अन्य**[1] वाले मामले में भी निम्न प्रकार व्यक्त किया है :–

> "6..... न्याय के हित के लिए इससे महत्वपूर्ण अपेक्षा कोई और नहीं हो सकती कि निष्पक्ष बाधा रहित विचारण किया जाए और ऐसे निरन्तर निष्पक्ष विचारण के लिए उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों की ईप्सा की जाती है जिसका अवलंब अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसे मामलों में लिया जाता है जिनमें यह अभिकथन किया गया हो कि अभियुक्त साक्षियों को धमकी देकर निष्पक्ष विचारण किए जाने में रुकावट पैदा कर रहे हैं । इसी प्रकार जब कोई अभियुक्त, जिसे जमानत पर छोड़ा गया है, जमानत आदेश का उल्लंघन करता है और विचारण से बचने के लिए विदेश भागने का प्रयास करता है, तब यह ऐसा मामला कहलाएगा जिसमें अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जाना अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण के लिए न्यायालय में पेश करने का आदेश जारी करने हेतु न्यायोचित होगा ताकि अभियुक्त यह लाभ न ले सके कि उसे जमानत पर छोड़ा गया है और वह अन्य किसी देश के लिए फरार हो सकता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है, यदि जमानत पर छोड़े जाने पर, अभियुक्त का पश्चात्वर्ती आचरण निष्पक्ष विचारण के प्रतिकूल दिखाई देता है और यदि अभियुक्त के विरुद्ध अन्य कोई उपचार उपलब्ध नहीं है तब ऐसे मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जाना विधिसम्मत कहा जा सकता है ..... ।"

24. हमने इस तथ्य पर पूरी तरह विचार किया है कि प्रत्यर्थी विचारणाधीन है और उसकी स्वतंत्रता भी एक सुसंगत परिस्थिति है । तथापि, महत्वपूर्ण परिस्थिति समाज का हित और मामले का निष्पक्ष विचारण है । इस प्रकार, निःसंदेह न्यायालयों को अभियुक्तों के जमानत आवेदन पर विचार करते समय रियायती दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । तथापि, वर्तमान मामले में, यदि यह पाया जाता है कि निष्पक्ष विचारण में अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने पर उसके द्वारा बाधा उत्पन्न करने की संभावना है तब समाज के हित में निष्पक्ष विचारण अभियुक्त के निजी हित से अधिक महत्वपूर्ण होगा जिसमें एक ओर अभियुक्त की स्वतंत्रता और दूसरी ओर समाज के हित में निष्पक्ष विचारण का संतुलन बनाना होगा ।

---

[1] [1958] एस. सी. आर. 1226.

जब साक्षी न्यायालय में ठीक प्रकार अभिसाक्ष्य देने योग्य नहीं होते हैं तब दोषसिद्धि की दर कम हो जाती है और बहुत बार घोर अपराधी दोषसिद्धि से बच निकलते हैं । इससे समाज का दांडिक न्याय तंत्र से विश्वास उठने लगता है । न्याय के हित के लिए यह आवश्यक है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि दांडिक न्याय तंत्र प्रभावी रूप से ठीक प्रकार और निष्पक्ष रीति में कार्य कर रहा है और इसे ऐसी स्थितियों में अत्यधिक महत्व दिया जाना चाहिए । कुल मिलाकर, यदि साक्षियों को धमकी दिए जाने से निष्पक्ष विचारण प्रभावित होता है तब यही कहा जाएगा कि ऐसा अभियुक्त के दुर्व्यवहार से हो रहा है और अभियुक्त को उसके परिणाम भुगतने चाहिए । इस स्थिति को बहुत स्पष्ट शब्दों में इस न्यायालय द्वारा **मसरूर** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में व्यक्त किया गया है :–

> "15. इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता अत्यधिक महत्वपूर्ण है और न्यायालय द्वारा उसकी गंभीरता के साथ संरक्षा की जानी चाहिए । फिर भी, ऐसी संरक्षा प्रत्येक स्थिति में मान्य नहीं हो सकती । किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्वपूर्ण अधिकार और समाज के हित के बीच संतुलन होना चाहिए । किसी अपराध के अभियुक्त की स्वतंत्रता मामले की संवेदनशीलता पर निर्भर करती है । यह संभव है कि किसी स्थिति में समाज का संचयी हित किसी व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता के अधिकार से अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है । इस संदर्भ में, इस न्यायालय द्वारा सहजाद हसन खान **बनाम** इश्तियाक हसन खान [(1987) 2 एस. सी. सी. 684] वाले मामले के पृष्ठ 691 पर पैरा 6 में निम्न मत व्यक्त किया गया है –
>
> > '6.... स्वतंत्रता की संरक्षा विधि की प्रक्रिया के अनुसार की जानी चाहिए जिसमें अभियुक्त के हित, आहत के उन निकट संबंधियों को ध्यान में रखना चाहिए जिन्होंने अपने सदस्य का जीवन गंवाया है और स्वयं को असहाय महसूस करते हैं और उनका यह विश्वास है कि संसार में कोई न्याय नहीं है तथा समाज के संचय हित को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि पक्षकारों का विश्वास न्यायालयों आदि से न उठे और वे निजी प्रतिशोध की भावना न रखें ।'

[1] (2009) 14 एस. सी. सी. 286.

2016(11) eILR(PAT) SC 1

25. इन दोनों हितों के बीच संतुलन बनाए रखने के इस पहलू पर इस न्यायालय द्वारा **नीरू यादव** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में भी निम्न शब्दों में मत व्यक्त किया गया है :–

> "16. हमारे समक्ष यह मुद्दा प्रस्तुत किया गया है कि यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को बातिल कर सकता है या नहीं और द्वितीय प्रत्यर्थी की स्वतंत्रता को न्यून कर सकती है या नहीं । हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता अमूल्य है । यह संवैधानिक अधिकार पर आधारित है और मानव अधिकार के सिद्धांत पर निर्भर करती है । मूल रूप से स्वतंत्रता नैसर्गिक अधिकार है । वास्तव में, कुछ लोग इसे जीवन की व्याकरण भी कहते हैं । कोई भी व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता को खोना या नष्ट करना नहीं चाहेगा चाहे उसे पूरे संसार की संपत्ति क्यों न दे दी जाए । कई शताब्दियों से लोग स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, स्वतंत्रता न मिलने पर हीन भावना का अहसास होता है । किसी भी सभ्य समाज का आधार स्वतंत्रता का भाव है । कोई भी सभ्यता स्वतंत्रता के महत्व पर ही चलती है । इसे शिथिल और निश्चल नहीं किया जा सकता । किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से वंचित करना उसके मन और तन पर दुष्प्रभाव डालना है । लोकतांत्रिक निकाय जो विधि के नियम से संबद्ध है, स्वतंत्रता की गंभीरतापूर्वक रक्षा करता है । किंतु आपातकालीन और महत्वपूर्ण परिस्थिति में किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता आत्यंतिक नहीं है । समाज अपने संचयी विवेक द्वारा विधि की प्रक्रिया के माध्यम से स्वतंत्रता प्रत्याहृत कर सकता है जो उसने किसी व्यक्ति को उस समय मंजूर की होती है जब वह व्यक्ति समाज के लिए खतरा बन जाए । किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा इतनी नहीं बढ़ाई जा सकती कि उससे समाज में अनुशासनहीनता पैदा हो जाए । समाज अपने सदस्यों से जिम्मेदारी और जवाबदेही की प्रत्याशा करता है और उसके द्वारा यह वांछित है कि नागरिकों को विधि का पालन सामाजिक नियम के अनुसार करना चाहिए । कोई भी व्यक्ति समाज के प्रचलन में रुकावट पैदा करने का प्रयास नहीं कर सकता । यह अननुज्ञेय है । अतः, जब कोई व्यक्ति अनुशासनहीनता के आधार पर कार्य करता है जिसकी समाज निन्दा करता है, तब विधि के आधार पर कार्यवाही

---

[1] (2014) 16 एस. सी. सी. 508.

करनी ही चाहिए । इस प्रक्रम पर, न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है । न्यायालय अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकता और वह अपने तरीके से आदेश पारित नहीं कर सकता । न्यायालय को विधि के सुस्थापित मानदंडों का पालन करना ही होगा ।

17. वर्तमान मामले पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जब यह आधार लिया गया था कि द्वितीय प्रत्यर्थी का आपराधिक इतिहास रहा है, तब उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि प्रत्येक पहलू की संवीक्षा करे और सरसरी तौर पर यह अभिलिखित न करे कि द्वितीय प्रत्यर्थी समता के आधार पर जमानत पाने का हकदार है । पूरी प्रमाणिकता के साथ यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि यह समता का मामला नहीं है, अतः, आक्षेपित आदेश [मिठ्ठन यादव **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य, दांडिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन सं. 31078/ 2014, तारीख 22 सितंबर, 2014 को विनिश्चित (इलाहाबाद)] से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, वास्तव में अभिलेख पर यह उपलब्ध है कि द्वितीय प्रत्यर्थी को अन्य जघन्य अपराधों के लिए आरोपित किया गया है । उच्च न्यायालय इस पर विचार करने में असफल रहा है । अतः, यह आदेश निष्क्रिय हो जाता है क्योंकि इस न्यायालय द्वारा इस आदेश का अनुमोदन किया जाना अन्याय की कोटि में आएगा, तद्नुसार हम इसे अपास्त करते हैं ।"

26. **रमेश और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में जो दो दिन पहले ही अर्थात् तारीख 22 नवंबर, 2016 को विनिश्चित किया गया था, इस न्यायालय ने पक्षद्रोही होने वाले साक्षियों की समस्या की चर्चा की है और यदि कोई साक्षी गलत कारणों से पक्षद्रोही हो जाता है तब आपराधिक न्यायतंत्र की मर्यादा प्रभावित होती है । हम उक्त निर्णय के पैराओं को उद्धृत करना चाहेंगे :–

40. अनेक मामलों का विश्लेषण करने पर, निम्न कारण विरचित किए जा सकते हैं जो साक्षियों को न्यायालय के समक्ष अपने कथन से विचलित करते हैं और साक्षी पक्षद्रोही हो जाते हैं –

(i) धमकी/अभित्रास,

(ii) कई साधनों से उत्प्रेरित करना,

---

[1] 2014 की दांडिक अपील सं. 25-26, निर्णय की तारीख 22.11.2016.

(iii) अभियुक्त द्वारा शक्ति और धन का प्रयोग किया जाना,

(iv) बनावटी साक्षी का प्रयोग किया जाना,

(v) दीर्घकालिक विचारण,

(vi) अन्वेषण और विचारण के दौरान साक्षियों द्वारा कठिनाइयों का सामना किया जाना, और

(vii) साक्षियों के पक्षद्रोही होने को रोकने के लिए स्पष्ट विधान का विद्यमान न होना ।

41. साक्षियों के पक्षद्रोही होने के मुख्य कारणों में एक कारण धमकी और अभित्रास है । बेन्थम ने कहा है : साक्षी न्याय के आंख और कान होते हैं । जब साक्षी न्यायालय में सही साक्ष्य नहीं दे पाते हैं, तब दोषसिद्धि की दर कम हो जाती है और प्रायः घोर अपराधी दोषसिद्धि से बच जाते हैं । इससे समाज का विश्वास आपराधिक न्यायतंत्र में कम हो जाता है । यही कारण है कि साक्षियों की संरक्षा के लिए बहुत सी चर्चाएं की गईं हैं और बहुत से लोगों द्वारा समाज से मांग की गई है कि वह साक्षियों की सुरक्षा के लिए सटीक भूमिका निभाएं, विशेषकर ऐसे संवेदनशील मामलों में विचारण किया जाना चाहिए जिनमें शक्तिशाली व्यक्ति अन्तर्वलित होते हैं और जिन्हें राजनैतिक संरक्षण प्राप्त होता है और जो शक्ति और धन का प्रयोग कर सकते हैं ताकि विचारण की प्रक्रिया दूषित और विचलित होने और सत्य नष्ट होने से बच सके । इस संबंध में जाहिरा हबीबुल्लाह वाले मामले में भी कड़ा और प्रभावशाली संदेह दिया गया है ।

42. साक्षियों को सत्य अभिसाक्ष्य बिना किसी भय के देने के लिए संरक्षा संबंधी उपायों को न्यायोचित ठहराते हुए दांडिक न्यायतंत्र, 2003 में सुधार पर न्यायमूर्ति मलिमठ समिति की रिपोर्ट निम्न प्रकार है –

"11.3 एक अन्य बड़ी समस्या साक्षियों और उनके परिवार के सदस्यों की सुरक्षा से संबंधित है जो विभिन्न प्रक्रम पर भय का सामना करते हैं । उन्हें प्रायः धमकी दी जाती है और धमकी की गंभीरता मामले की परिस्थिति और अभियुक्त और उसके परिवार की पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है । बहुत बार महत्वपूर्ण

साक्षियों को न्यायालय में साक्ष्य देने के पूर्व धमकी दी जाती है या उन्हें क्षति पहुंचाई जाती है । यदि साक्षी धमकी के बावजूद न माने तब उसकी हत्या भी कर दी जाती है । ऐसी परिस्थितियों में साक्षी तब तक साक्ष्य देने के लिए आगे नहीं आएगा जब तक कि उसे संरक्षा का आश्वासन न दे दिया जाए या उसका नाम और हुलिया छिपाने की गारंटी न दे दी जाए । साक्षियों और उसके परिवार के सदस्यों की संरक्षा के लिए व्यापकार्थक विधि प्रवृत्त किए जाने का समय आ चुका है ।"

43. भारतीय विधि आयोग की 198वीं रिपोर्ट (साक्षी की शनाख्त की संरक्षा और साक्षी संरक्षा कार्यक्रम पर रिपोर्ट) में की गई मताभिव्यक्तियां लगभग इसी प्रकार की हैं जिन्हें निम्न चर्चा में देखा जा सकता है –

"कारण का पता लगाना कठिन नहीं है । महिलाओं और किशोरों के विरुद्ध आतंकवाद और लैंगिक अपराधों के आहतों के मामले में, हम समाज के उस वर्ग के लोगों के मामले पर विचार कर रहे हैं जो सबसे असुरक्षित महसूस करते हैं, चाहे वे आहत हों या साक्षी । आहतों और साक्षियों को अपने जीवन और संपत्ति या अपने नातेदारों के जीवन और संपत्ति को नुकसान पहुंचाने का भय रहता है । यह स्पष्ट है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 और अन्य विशेष अधिनियमों के अधीन गंभीर अपराध के मामलों में जिनमें से हमने कुछ मामलों को ऊपर निर्दिष्ट किया है, उनमें आहतों और साक्षियों की ऐसी ही स्थिति दर्शाई गई है । विशेष कानूनों के अधीन आहतों और साक्षियों को ऐसा भय अधिकतर सामान्य और उद्घोषित हो सकता है, गंभीर अपराधों से संबंधित मामलों में आहत और साक्षियों का भयभीत होना कम स्वाभाविक नहीं है । स्पष्टतः, विशेष अपराधों के मामलों में यदि विचारण अभियुक्त तथा आहतों/साक्षियों अर्थात् दोनों के लिए निष्पक्ष है, तब इस बात का कोई कारण नहीं है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 के अधीन गंभीर प्रकृति के सामान्य अपराधों के मामलों में विचारण उतना ही निष्पक्ष किया जाएगा । दोनों ही प्रकार के मामलों में भय या खतरा या उसके जैसी स्थिति हो सकती है । यही कारण है कि अन्य देशों में बहुत से सामान्य कानूनों के अधीन आहतों और साक्षियों को

संरक्षा दिए जाने का उपबंध किया गया है ।"

27. निःसंदेह, अभियोक्त्री की परीक्षा पहले ही की जा चुकी है । तथापि, अभियोक्त्री के पिता और बहन सहित अन्य महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा अभी कराई जानी शेष है । अभिलेख के अनुसार, अभियोक्त्री तथा उसके परिवार के सदस्यों को धमकी दी गई है । अतः, हम यह महसूस करते हैं कि उच्च न्यायालयों को, हमारे द्वारा बताए गए सभी महत्वपूर्ण और सारभूत पहलुओं को अनदेखा करते हुए, जो सुसंगत हैं, प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर नहीं करनी चाहिए थी ।

28. पूर्वगामी कारणों के आधार पर हम एतद्द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हुए यह अपील मंजूर करते हैं । यदि प्रत्यर्थी को पहले ही छोड़ दिया गया है, तब वह अभ्यर्पण करेगा और/या उसे तत्काल अभिरक्षा में लिया जाएगा । यदि वह अभी तक जेल में है तब वह इस निर्णय के परिणामस्वरूप जेल में ही रहेगा ।

29. इसके पूर्व कि हम इस निर्णय का निपटारा करें, हम यह स्पष्ट कर देते हैं कि इस न्यायालय ने इस मामले के गुणागुण पर कोई भी मत व्यक्त नहीं किया है । प्रत्यर्थी उस पर विरचित किए गए आरोपों का दोषी है या नहीं, यह मामले के अपने गुणागुणों के आधार पर विचारण के दौरान अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाएगा ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./पां.